सुमित्रानंन्दन पन्त का काव्य–शिल्प : विशेष सन्दर्भ छायावाद

Poetry-Craft of Sumitranandan Pant: Special Reference to Shadowism

Paper Submission: 10/10/2020, Date of Acceptance: 25/10/2020, Date of Publication: 26/10/2020

शालिनी सिंह
असिस्टेंट प्रोफसर,
हिन्दी विभाग,
अखिलभाग्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रानापार, गोरखपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

पंत के काव्य में शिल्प–पक्ष को शायद अधिक महत्व प्राप्त है। इसलिए इनको कवि की अपेक्षा कलाकार अधिक माना जाता है। इनके भाव प्रायः सुकुमार होते हैं, अतः इनकी कला का स्वरूप भी कोमल है। इस सुकुमारता व कोमलता के कारण इनकी कला की तुलना तितली के रंगीन पंखों से की गई है। परन्तु अपवाद रूप में यह कला पौरूष एवं कठोर परिधान भी धारण करती है, जिसका परिचय इनकी 'प्रगतिशील' रचनाओं में उपलब्ध होता है। यह शीघ्र ही पुरूष का परिधान उतार कर नारी–सुलभ श्रृंगार करने लगती है। इसलिए इनकी कला अन्य छायावादी कवियों की भाँति मूलतः अलंकृत है और अलंकरण के साधनों में भाषा तथा छन्दों के विशिष्ट प्रयोग हैं। इनकी भाषा चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता आदि गुणों से युक्त है और इनका छन्द–विधान संगीतात्मकता से सम्पन्न है। कारण, पंत ने केवल इतिवृत्तात्मक कविता के साथ ही विद्रोह नहीं किया वरन छन्द भाषा और अलंकारों में भी क्रान्ति की है।

The craft-side is perhaps more important in Pant's poetry. Therefore, he is considered more of an artist than a poet. Their expressions are often delicate, so their art form is also soft. Due to this tenderness and softness, his art has been compared to the colorful wings of the butterfly. But as an exception, this art also carries virility and hard-wearing, the introduction of which is available in their 'progressive' creations. It soon takes off the dress of the man and starts making women accessible. Therefore, his art is basically ornate like other cinematic poets and there are specific uses of language and verses in the means of ornamentation. His language is full of qualities like pictorialism, semiotics, symbolism etc. and his verses are full of musical musicality. Because, Pant did not revolt not only with chronological poetry, but also revolutionized the Chand language and ornaments.

मुख्य शब्द : चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, वस्तुविन्यास, विश्रृंखलता, बिम्बात्मक, ध्वंन्यात्मक, संगीतात्मकता, अद्भुत, स्वरैक्य। Figurativeness, Semiotics, Symbolism, Objectivity, Descriptiveness, Imaginal, Phonetic, Musicality, Wonderful, Vocal.

प्रस्तावना

पंत जिस प्रकार एक संवेदनशील रचनाकार हैं, उसी प्रकार उनका शिल्प–पक्ष भी पुष्ट है। उनके काव्य में अधिकतर संवेदना और शिल्प का उचित संतुलन परिलक्षित होता है। यद्यपि पंत की कला उस प्रकार की कतई नही हैं, जिसे 'कॉशस' कला कहते है, फिर भी जिस मात्रा में कला–पक्ष पर ध्यान देना एक समर्थ कवि के लिए अनिवार्य होता है, उसमें उन्होंने कोई कमी नहीं की है। डॉ0 नगेन्द्र ने पंत के विषय में अपना विचार प्रकट किया है, ''आपका विद्रोह सबसे अधिक कला के क्षेत्र में ही प्रकट हुआ है। भावों में जहाँ आपने उपयोगिता के विरूद्ध भावुकता का विद्रोह खड़ा किया है, वहीं कला में रूढ़ि और रीति की जटिलता के विरूद्ध सहज अलंकृत स्वाभाविकता का स्वरूप सम्मुख रखा है।''[1] छायावाद का आन्दोलन, जिससे पंत अपने काव्यकाल के प्रारम्भ में ही संबद्ध हुए, जहाँ एक एक ओर विषय–वस्तु के स्तर पर घटित हुआ वहाँ शिल्प के स्तर पर

भी उसने अपनी एक पहचान बनाने का प्रयास किया। इसके पीछे का स्पष्ट तर्क यह था कि नवीन विषय नवीन शिल्प का मांग करते हैं। पंत ने भी इस नवीन शिल्प के निर्माण में अपना प्रभुत योग दिया। बाद में जब वे स्वयं छायावाद के क्षेत्र से मिलकर यथार्थवाद की भूमि पर आ गए तो उन्होंने पुनः शिल्प के स्तर पर भी अपने इस नवीन संक्रमण को घटित करने का प्रयास किया। प्रगतिवाद से आध्यात्मिक भौतिक चेतना की भूमि में उनका संक्रमण भी इसी प्रकार विषय और शिल्प के स्तर पर घटित हुआ है। डॉ0 रामजी पाण्डेय ने लिखा है, ''इस प्रकार का समर्थ रचनाकार की तरह पंत ने जब भी अपनी संवेदन–भूमि बदली, उन्होंने नवीन संवेदन को संप्रेषणीय बनाने के लिए नवीन प्रकार का शिल्प भी अपने लिए तैयार किया।''[2] लेकिन यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार विभिन्न संवेदना–भूमियों पर पंत का संक्रमण आकस्मिक ढंग से नहीं घटता उसी प्रकार उनके शिल्प में भी कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं परिलक्षित होता। यह समझना भूल ही होगी कि पंत ने छायावादी कविता के लिये एक प्रकार के शिल्प का प्रयोग किया, प्रगतिवादी काव्य के लिए बिल्कुल दूसरे प्रकार के शिल्प का और चेतनावादी काव्य के लिए उससे भी भिन्न के शिल्प का, ऐसा नहीं है। रचनाकार का शिल्प उसकी अपनी विशिष्ट सौन्दर्य–दृष्टि, कल्पना के उत्कर्ष और भाषा के स्वरूप आादि की उपज होता है, वह रातोरात नहीं बदल जाया करता, प्रत्युत वह अपनी विशिष्ट पहचान को सुरक्षित रखते हुए अपने को विभिन्न विषयों के अनुकुल बनाता चलता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन सुमित्रानन्दन पंत जी के छायावादी काव्य–शिल्प तथा इनके विचार रहस्यात्मक अभिव्यंजना एवं उनके लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की चित्रमयी भाषा और मधुमुखी कल्पना को इस शोध प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही छायावादी प्रगति–शैली की विशेषताओं का निरूपण करने का प्रयास इस शोध का उद्देश्य है। इनके अलावा कल्पना का उत्कर्ष, काव्यभाषा का निवीन स्वरूप आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। पंत जी की कविताओं का प्रधान साधन रहा है एवं विविध चित्रों का सजीव अंकन, उपमा एवं रूपक की मधुर योजनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

पन्त का छायावादी काव्य–शिल्प

''छायावाद' नाम चल पड़ने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विश्रृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले।''[3] पंत का काव्य–शिल्प प्रगीत और प्रबन्ध की मिश्र चेतना के विकसित हुआ है। कृष्णदत्त पालीवाल का कहना है, ''छायावाद वैसे भी प्रगीत–कला का स्वर्ण–युग है–जिसमें पंत की प्रगीत–साधना का गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से प्रदेय सर्वाधिक है।''[4] उन्होंने अपने मन की बेगवान स्वतः स्फूर्त अनुभूतियों को गेयात्मक स्वर–संघात में ढाल कर अभिव्यक्त किया है। हिन्दी में गीत, गीति–काव्य जैसे शब्दों के रहने पर भी आधुनिक काल में 'लिरिक' के समानार्थी 'प्रगीत' जैसे शब्द को निर्मित करना–इस विद्या विशेष की उस आन्तरिक विशिष्टता को सांकेतिक करता है–जो अंगेजी के स्वच्छन्दतावादी कवि वड्र्सवर्थ–शेली आदि से प्रभावित होकर छायावादी कविता में रूप–सृष्टि होती है। ''पंत के छायावादी काव्य पर दृष्टिपात करते ही जिस बात पर सबसे पहले ध्यान जात है वह यह कि लगभग सारा का सारा प्रगीत काव्य है। इसलिए पंत के छायावादी काव्य शिल्प मूलतः और प्रधानतः प्रगीत काव्य का शिल्प है।''[5]

आधुनिक प्रगीत का सम्बन्ध संगीत–शास्त्र की जटिल स्वर प्रक्रिया से न होकर भाव–अनुवर्तिनी आन्तरिक लय से है–इनमें छन्द के शास्त्रीय बन्धनों का दृढ़ता से पालन नहीं किया जाता। पंत के प्रगीत का स्वरूप आधुनिक प्रगीत कला की भाव–भंगिमाओं से गढ़ा गया है। मूलतः यह व्यक्ति–प्रधान (सब्जेक्टिव पोयट्री) काव्य की सुन्दर उपलब्धि है। प्रगीतकार रवीन्द्रनाथ की प्रगीत कला ने भी पंत को भीतर से पकड़ा हुआ है–उनमें भावना की अन्तर्व्याप्ति, अनुभूति की तीव्रता ओर संगीत–तत्व की मधुरिमा तीनों ही मोहक ढ़ग से विद्यमान हैं।

प्रगीत के अनेक रूप शिल्प तथा विषय के स्तर पर इस काव्य में प्रकट हुए हैं। इनमे सबसे बड़ी संख्या संभवतः संबोधनगीतियों की है। संबोधनगीतियों को हम अंग्रेजी 'ओड' का प्रभाव मान सकते हैं। इस प्रकार की संबोधनगीतियाँ वीणा में 'बढ़ा और भी तो अंतर', 'आज वेदने आ तुझको भी', 'मम जीवन की प्रमुदित प्रात', 'कौन कौन तुम परिहत वसना', 'इस पीपल तरू के नीचे', 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि', पल्लव में, 'वीचि विलास', 'मधुकरी', 'अनंग', 'छाया', 'नारी रूप', 'नक्षत्र', 'सोने का गान', 'परिवर्तन' तथा 'गुंजन' में 'विहग के प्रति', 'अप्सरा' आदि हैं। परंतु इन सभी गीतियों का 'ओड' समझ लेना भूल होगी। 'ओड' में किसी प्राकृतिक वस्तु, व्यापार या किसी भाव, विचार आदि को संबोधित करके कवि अपने भावों और विचारों की उत्कट अभिव्यंजना करता है। इस दृष्टि से 'अनंग', 'परिवर्तन', 'अप्सरा' आदि कुछ ही कविताएं 'ओड' की श्रेणी में आ सकती है। शेष अधिकांश में 'ओड' के उपयुक्त विषय और शैली का अभाव है। इनमें से अधिकांश सीधी गीतियां हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने की है। पंत में प्रकृति या अन्य किसी वस्तु अथवा व्यापार के माध्यम से अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है। प्रायः वे तन्तत् वस्तुओं के रूपात्मक सौंदर्य पर इतने मुग्ध रहते हैं कि उसी के बहुआयामी स्वरूप की व्यंजना अनेकानेक अप्रस्तुतों और अत्प्रेक्षाओं की सहायता से करते चले जाते हैं। अंत में कहीं उनका व्यक्तिगत भाव अंतिम पंक्तिओं में गौण रूप से लगा चला आता है। इसलिए प्राकृतिक वस्तु आदि के माध्यम से व्यापक, संश्लिष्ट पद्धति पर अपने भाव–विचार आदि को गरिमापूर्ण शैली में प्रस्तुत करने की जो शैली 'ओड' कहलाई, वह पंत के बहुत अनुकूल नहीं पड़ती। उन्नीसवीं शती के रोमैंटिक कवियों द्वारा जिस अव्यवस्थित 'ओड' का प्रचलन किया गया, उसमें भी

चिन्तन, भाव आदि का संश्लेषण तथा शैली की गरिमा का तत्व निश्चित रूप से था। शैली की 'ओड टू द वेस्ट विंड' तथा कीट्स की 'ओड टू द नाइटिंगेल' अव्यवस्थित ओड के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। स्पष्टतः ही इन कविताओं की श्रेणी में पंत की 'परिवर्तन' की छोड़कर शायद ही अन्य कोई कविता आ सके। अतएव जिन कविताओं का नाम हमने ऊपर लिया है उन्हें हम सामान्य रूप से संबोधनगीतियां कह रहे हैं, 'ओड' नहीं। वैसे 'ओड' शब्द के लिए 'संबोधनगीति' शब्द का प्रयोग कभी–कभी किया गया है, पर हम इस शब्द का प्रयोग केवल संबोधनपरक गीतों के अर्थ में कर रहे हैं। संबोधन की शैली पंत में बहुत व्यापक स्तर पर प्रयुक्त हुई है। अन्य छायावादियों में भी यह दिखलाई पड़ती है। यह सम्भवतः 'ओड' का प्रभाव कहा जाएगा। वैसे संबोधन की शैली सदैव 'रोमैंटिसिज्म' से जुड़ी भी रही है।

संबोधनगीतियों के अतिरिक्त पंत में गीत (प्रगीत के एक सगीताश्रित भेद के रूप में), चतुर्दशपदी गीति, शोकगीत आदि प्रगीत–रूपों के उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं। 'ज्योत्स्ना' के उत्कृष्ट गीत, 'वीणा' की शोकगीत 'तिलक! हा! भाल तिलक!' गुंजन की चतुर्दशपदी गीति 'देखू सबके उर की डाली' आदि सामने रखे जा सकते हैं, पर इन सभी विभाजनों का जमाव न करके हम केवल यह कहना चाहते हैं कि पंत की अधिकांश छायावादी कविताएं गीतियां हैं। उनमें से हम प्रयास करके 'सानेट', 'ओड' आदि के उदाहरण भी निकाल सकते हैं। पर प्रायः इन पाश्चात्य काव्य–रूपों का पंत पर बहुत कम प्रभाव है। इनकी अपेक्षा पंत पर स्वच्छन्दतावादी साहित्य के व्यापाक गीति तत्व का ही अधिक प्रभाव पड़ा है।

''वीणा' की तुतली कविताएं, 'पल्लव' की आवेग–दीप्त गीतियाँ, सभी उन्मुक्त कण्ठ के स्फुरण हैं। इन सभी को एक भाव अनुप्राणित करता है– अतः इनकी हार्दिकता एवं स्वाभाविकता अक्षुण्ण है।''[6] उदहारणार्थ 'वीणा' के तो अधिकांश शुद्ध छन्द शुद्ध गीत–काव्य की विभूति हैं। 'पल्लव' में कल्पना का प्रधान्य कहीं–कहीं हार्दिकता में बाधक पड़ता है– जैसे 'नक्षत्र', 'स्याही की बूंद' आदि कविताओं में– परन्तु फिर भी उसकी अनेक गीतियाँ हृदय के उद्‌गारों से आक्रान्त हैं। 'पल्लव' के मौन निमन्त्रण, अनंग, विसर्जन और बालापन अन्य गीतों के अमर उदाहरण हैं। तनिक बालापना की अस्पुष्ट झंकार सुनिये –

हाँ, हाँ, वही, वही, जो जल, थल,
अनिल, अनल, नभ से उस बार
एक बालिका के क्रंदन में
ध्वनित हुई थी, बन साकार!

x x x

पला हुआ वह स्वप्न पुनीत![7]

इस विषय तथा शैलीगत वैविध्य के बावजूद पंत के छायावादी प्रगीत की कुछ सामान्य विशेषताएं हैं जो कमोवेश सभी प्रकार के प्रगीतों में पाई जाती है और पंत के छायावादी शिल्प की एक अलग पहचान बनाती हैं। आगे हम इन विशेषताओं को एक–एक करके लेंगे, परंतु इसके पहले हम पंत के छायावादी काव्य की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण रचनाओं पर विचार कर लें तो प्रगीत के अन्तर्गत नहीं आतीं। ये रचनाएं 'ज्योत्स्ना' (नाटक), और 'ग्रंथि' (खण्ड–काव्य) हैं। ज्योत्स्ना का गठन कवि ने नाटक की अपेक्षा काव्य के स्तर पर अधिक किया हैं। नाट्य–कला के नियमों की अपेक्षा इस कृति में कवि का ध्यान आदर्शवादी जीवन–दृष्टि तथा कव्यात्मक शैली पर ही विशेष रूप से है। इसलिए नाट्यकृति की अपेक्षा काव्यकृति के रूप में ही उसका मूल्यांकन अधिक समीचीन है। काव्यरूपों में भी 'ज्योस्तना' की शैली प्रगीत के सबसे अधिक निकट है। 'ज्योस्त्ना' के आकार को देखते हुए यह बात कुछ विभित्र लग सकती है, पर है यह सत्य। 'ज्योस्त्ना' के प्रगीतात्मक (गद्य–रूप में हाने के बावजूद) वर्णनों और कथोपकथनों को जोड़ने वाले क्षीण कथा–सूत्र को तथा उसकी आदर्शवादी योजना को निकाल दिया जाय तो 'ज्योस्त्ना' अनेक गद्य–गीतों का संग्रह ही रहेगी। इसके अतिरिक्त उसमें अनेक उत्कृष्ट गीत भी है।

'ग्रंथि' को हम खंडकाव्य की अपेक्षा लंबा प्रगीत अधिक समझते हैं जोड़–तोड़कर उसे खंडकाव्य सिद्ध भी कर दिया जाय तो भी उसकी अनिवार्य प्रगीतात्मकता से इनकार नहीं किया जा सकता। उसे खंडकाव्य से कुछ अलग करने वाली दो बातें हैं– स्मरण शैली तथा आत्मकथात्मकता। इसके बावजूद यदि ग्रन्थि को खंडकाव्य माना ही जाय तो उसे कालिदास के 'मेघदूत' की शैली का खंडकाव्य मानना होगा जिसमें एक निश्चित प्रगीत तत्व रहता है, न कि मैथिलीशरण गुप्त के 'सिद्धराज' की तरह का खंडकाव्य जिसमें वर्णनात्मकता प्रधान हो।

अब हम पंत की छायावादी प्रगीत–शैली की विशेषताओं का निरूपण करने में प्रवृत्त हो सकते हैं। ये विशेषताएं चित्रात्मकता, कल्पना का उत्कर्ष, काव्यभाषा का नवीन स्वरूप आदि हैं। हम इन पर क्रम से विचार करेंगे।

चित्रात्मकता

चित्रात्मकता छायावाद की प्रमुख विशेषता, बल्कि कभी–कभी एकांत लक्षण के रूप में स्वीकार की गई है। पंत के काव्य में इस चित्रात्मकता का स्वरूप दो प्रकार से प्रकट हुआ है– एक तो बिंब–विधान के द्वारा और दूसरे भाषा के चित्रात्मकता प्रयोंग द्वारा। अपने बिंब विधान में पंत ने प्रायः प्रकृति, स्त्री–सौन्दर्य के उपादानों तथा भावनाओं का उपयोग किया है। वे प्रायः प्राकृतिक सौन्दर्य के अंकन के लिए स्त्री सौन्दर्य के बिंबो का तथा स्त्री–सौन्दर्य के लिए प्राकृतिक बिंबों का सहारा लेते पाये जाते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य का इस प्रकार का एक बिंबात्मक 'अंकन' 'गुंजन' से दष्टव्य है :

सैकत–शय्या पर दुग्ध–धवल,
तन्वंगी गंगा ग्रीष्म–विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल!
तापस–बाला–सी गंगा कल
शशि मुख से दीप्ति मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल।[8]

इन पंक्तियों में ग्रीष्म की गंगा का चित्र तन्वंगी, क्लांत तापस–बाला के अप्रस्तुत द्वारा उपस्थित किया गया

है। इस सम्पूर्ण चित्र का एक–एक अंश ध्यान देने योग्य है। पंत की इसी शब्द–संवेदना को ध्यान में रखकर डॉ0 नगेन्द्र ने उनके कलाकार रूप को सर्वोपरि बताया है। ''इनके काव्य में सबसे प्रथम कला का, उसके उपरान्त विचारों का और अन्त में भावों का स्थान रहता है।''[9]

अब हम प्राकृतिक बिंब के माध्यम से स्त्री–सौन्दर्य के अंकन का एक उदाहरण देखें :

नवल मधुऋतु नित्कुंज में प्रात
प्रथम कालिका–सी अस्फुट–गात,
नील नभ–अन्तःपुर में, तन्वि।
दूज की कला सदृश नवजात![10]

सुबह की पहली कली से नायिका की उपमा देने से निर्मल, अछूते कैशोर सौंदर्य की अद्भुत व्यंजना संभव हुई हैं। उसी प्रकार नील नभ अन्तःपुर में नई जन्मी दूज की कला से नायिका के अस्फुट यौवन की नव दीप्ति (जिसे उसी प्रकार फैलने से नहीं रोका जा सकता जैसे आकाश का अन्तःपुर दूज की चंद्रकला का प्रकाश नहीं छिपा पाता) की अच्छी व्यंजना हो सकी है।

भाव–निरूपण के लिए पंत में सबसे अधिक प्राकृतिक बिंबों का प्रयोग किया है। प्रतीक्षा और विप्रलम्भ की मिली–जुली अनुभूति के लिए ये प्राकृतिक बिंब दर्शनीय है–

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से?
संध्या उदास फिर आती
सूने गृह के आंगन से![11]

भाव–निरूपण के लिए इतने सादे और साथ ही इतने कल्पनाशील प्राकृतिक बिंब स्वयं पंत ने भी कम ही दिये हैं। ऊषा के रोज–रोज आकर झांक जाने में जो व्यंजकता है, बाद की दो पंक्तियों में उससे भी बड़ी व्यंजकता दिखाई पड़ती है। दिन–भर आंगन में बढ़ती–फैलती धूप मानों किसी को ढूंढ़ती रही है और संध्या के आने के साथ धीरे–धीरे मानों अनिच्छापूर्वक, उदास लौट रही है–'संध्या के उदास लौट जाने' से कुछ ऐसा ही भाव ध्वनित हो रहा है।

स्त्री–सौंदर्य–सम्बन्धी बिंबों का प्रयोग जितना वस्तु–वर्णन के लिए हुआ है, उतना भाव–वर्णन के लिए नहीं। परंतु कहीं–कहीं प्राकृतिक उपादानों और नारी–सौदर्य के मेल से अद्भुत भाव–व्यंजक बिंबों की सृष्टि हुई है। इस प्रकार का एक बिंब द्रष्टव्य है –

देखता हूँ, जब पतला
इंद्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कला;
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अंतर्धान;[12]

काव्य में आये है। निम्नलिखित उदाहरण में ध्न्यात्मक बिंब का उत्तम प्रयोग द्रष्टव्य है–

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर झर;
x x x
हृदय करते थे विविध प्रकार
शैल – पावस के प्रश्नोत्तर![13]

इसी प्रकार शब्द–बिंब, वर्ण–बिंब, विशेषण निर्भर बिंब, गत्यात्मक बिंब, मिश्र एंद्रियबोधों पर आधारित बिंब आदि बिंब की अनेक कोटियां पंत के छायावादी काव्य में देखी जा सकती है। उन सभी का विवेचन न यहां संभव है अभिप्रेत। हम ऊपर के संक्षिप्त विवेचन के आधार पर यहां केवल दो बातों की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। पहली बात तो यह कि पंत के अधिकांश बिंब प्रकृति और स्त्री–सौन्दर्य के क्षेत्र से आते हैं।

वैसे भाषा की चित्रात्मकता पर सभी छायावादियों ने बल दिया है, पर वहां इससे उसका अभिप्राय बिंब, प्रतीक, ध्वनि, अलंकार अंतः स्फूर्ति आदि सभी से होता है। हमारा अभिप्राय यहां अत्यन्त सीमित है। भाषा की चित्रात्मकता से हमारा तात्पर्य भाषा की उस शक्ति से है जिससे केवल शब्दों के प्रयोग द्वारा ही कवि चित्र खड़ा करने में समर्थ होता है।

'चित्रमयी भाषा' का अर्थ है रूपव्यंक शब्दों का प्रयोग। कविता के लिए चित्रमयी की उपयोगिता असंदिग्ध है। पंत ने उसकी उपयोगिता पर बल देते हुए 'पल्लव' की भूमिका में लिखा है, ''कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके, शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भावों को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में भिन्न, चित्र में झंकार हों, जिनका भाव संगीत विद्युत्धारा की तरह रोम–रोम में प्रवाहित हो सके ....।''[14]

छायावादी कविता में हमें चित्र–भाषा–पद्धति के दर्शन पदे–पदे उपलब्ध होते हैं। नामवर सिंह के शब्दों में, ''चित्रात्मकता छायावादी कविता की बहुत बड़ी विशेषता है।''[15] उदाहरण के लिए, पंत–रचित 'परिवर्तन' की कुछ पंक्तियों में चित्रमयी लाक्षणिक भाषा का चमत्कार अवेक्षणीय है –

अहें निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
x x x
शत – शत फेनोच्छ्वासित, स्फीत भयंकर
घुमा रहें हैं घनाकार जगती का अंबर![16]

चित्र–भाषा के ही समान चित्रराग के भी पर्याप्त उदाहरण, छायावादी रचनाओं में मिलते हैं। चित्र राग का अर्थ है भाषा और अर्थ का सामंजस्य अथवा स्वरैक्य। कवि के अनुसार, ''भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्र राग है। जैसे भाव ही भाषा में घनीभूत हो गये हों; निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन गये हों, छुड़ायें न जा सकते हो...।''[17] चित्र राग का यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

ढलकते हिमजल से लोचन,
अधखिला तन, अधखिला मन,

धूलि से भरा स्वभाव प्रकूल,
मृदुल छवि, पृथुल सरलपन!''[1]

कल्पना का उत्कर्ष

पंत के काव्य में कल्पना को अत्यधिक स्थान प्राप्त हुआ है। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में, ''कल्पना पंत जी की कविताओं का प्रधान साधन है। विविध चित्रों का सजीव अंकन, उपमा एवं रूपक की मधुर योजना आदि सब कुछ कल्पना की ही करामात है।''[19]

सौन्दर्यशास्त्रियों ने काव्य में कल्पना के दो व्यापार माने हैं– एक तो वह स्वयं स्रष्टा कवि के लिए बाह्य आलंबन के प्रथम आनन्द का ग्रहण दूसरे व्यापार से ही यहां हमारा संबंध है। छायावादी काव्य में चित्र–विधायिनी कल्पना का प्राचुर्य उसे उसके पूर्व के काव्य से अलग करता है। चित्रात्मकता पर विचार करते हुए हम पंत काव्य में चित्र–विधयायिनी कल्पना का उत्कर्ष कुछ देख आये हैं। यहां हमें यह देखना है कि कल्पना का तात्विक स्वरूप क्या है।

कुछ आलोचकों ने पंत की छायावादी कविता में फैंसी का प्रचुर उपयोग दिखाया है। उनका यह मत प्रतीत होता है कि कम से कम छायावाद काव्य में पंत शुद्ध कल्पना की अपेक्षा फैंसी की ओर अधिक उन्मुख हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि छायावादी पंत में वस्तुगत आधार, अनुभूति, पर्यवेक्षण इत्यादि की अपेक्षा तक है अनुमान आदि का प्राधान्य है। हमारे विचार में इस प्रकार की धारणा का आधार यह है कि रोमैंटिक कवियों में स्वभावतः कल्पना की अपेक्षा 'फैंसी' कुछ प्रबल रहती है और आलोचकों ने माना है कि यह पंत में अन्य छायावादी रोमैंटिक कवियों की अपेक्षा अधिक प्रबल है। इस प्रकार की धारण का कोई आधार नहीं है। वस्तुः अनुभूति आदि का आग्रह और पर्यवेक्षण का प्राचुर्य पंत मे अन्य सभी छायावादियों की अपेक्षा अधिक है। पंत–काव्य मे शुद्ध फैंसी की पंक्तियां द्रष्टव्य है –

धधकती है जलादों से ज्वाल,
बन गया नीलम व्यांम प्रवाल;
आज सोने का संध्याकाल
जल रहा जतुगृह – सा विकराल;[20]

इन पंक्तियों में अति कल्पना का उपयोग मानने का कारण संभवतः यह है कि दूसरी पंक्ति में नीलम का प्रवाल होना बताया गया है। वस्तुतः यहां नीलम और प्रवाल के विरोधाभास द्वारा कवि ने शुद्ध पारम्परिक ढंग का चमत्कार प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। 'फैन्सी' का क्षेत्र हम इतना फैला दे तो बड़े–बड़े वस्तुनिष्ठ कलाकारों मे भी 'फैन्सी' की प्रचुरता ढूढ़ी जा सकेगी। फैन्सी शब्द का प्रयोग मूर्ति–विधायिनी कल्पना से भिन्न कल्पना की उन्मुक्त उड़ान के अर्थ में ही किया जाना चाहिए। ऐसी उड़ान पंत में स्वभावतः ही मिलती है, पर मूर्ति–विधायिनी कल्पना भी पंत में उससे कुछ अधिक ही मुख्य है। यह महत्वपूर्ण बात है कि फैंसी का उपयोग करते–करते भी पंत बार–बार वस्तु–सम्पृक्ति की ओर लौट आते हैं।

यहाँ आलोचकों के इस मत का विरोध करने का हमारा कुल तात्पर्य केवल यह है कि अन्य छायावादियों का अपेक्षा पंत मे फैन्सी का उपयोग अधिक देखना मात्र इस चिरपरिचित भ्रम से उत्पन्न हुआ है (और इसी का पोषण करता है) कि पंत एक अंतर्मुख, स्वप्नजीवी कलाकार हैं। पंत की यह 'इमेज' बहुत दिनों मे सायास गढ़ी गई है। पंत एक बहुत ही अधिक वस्तुनिष्ठ कलाकार हैं। छायावाद युग में एक रोमैंटिक की हैसियत से पंत को यही एक बात अन्य छायावादियों से अलग करती है। वे रोमैंटिक हैं, उनमें रोमैंटिक काव्य की सारी विशेषताएँ पाई जाती हैं। 'फैन्सी' की प्रचुर उपयोग एक रोमैंटिक प्रवृत्ति है। पर यह कहना कि पंत ने औरों की अपेक्षा यह प्रवृत्ति अधिक प्रदर्शित की है, सरासर गलत है। पंत ने यह प्रवृत्ति प्रसाद की अपेक्षा बहुत कम प्रदर्शित की है, जैसे और जितने शुद्ध 'फैन्सी' के उदाहरण प्रसाद से दिये जा सकते हैं, पंत से नहीं।

वास्तव में, जिस प्रकार पंत के छायावादी काव्य–व्यक्तित्व में वैयक्तिकता और वस्तुनिष्ठता का मेल दिखलाई पड़ता है वैसे ही उनके छायावादी शिल्प में कल्पना और फैंसी का मेल दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार हम यह भी कह सकते है कि जिस तरह पंत में अंततः वस्तुन्मुखता व्यक्ति–निष्ठता से अधिक प्रबल है, वैसे ही उनके शिल्प में 'फैन्सी' की अपेक्षा मूर्तिविधायिनी, रचनात्मिका कल्पना अंततः अधिक प्रबल है। नीचे 'फैंसी' गर्भित कल्पनात्मकता का एक सुंदर उदाहरण 'गुंजन' से देकर इस संक्षिप्त निवेचन को समाप्त करेंगे :

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारदा हासिनि,
मृदु–करतल का शशि–मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि![21]

नवीन काव्यभाषा का स्वरूप

जहाँ तक पंत की काव्य–भाषा की बात है– वहां यह स्मरणीय है कि खड़ी बोली की सैकत–राशि पर उन्होंने जो अभिव्यंजना की नवीन रेखाएँ या छवियाँ अंकित की हैं–वे खड़ी बोली की अनुपम श्री–सम्पदा हैं। खड़ी बोली को कल्पना से अभिषिक्त कर पंत ने इतना निखार दिया कि उसकी सूरत चमक उठी। द्विवेदी युगीन व्याकरणिक भाषा को खींच कर तराश दिया। भाषा के विषय में वे कहते हैं– ''जिस प्रकार बड़ी चुवाने से पहले उड़द की पीठी को मथकर हल्का तथा कोमल कर लेना पड़ता है, उसी प्रकार कविता के स्वरूप में, भावों के ढ़ाँचों में ढालने के पूर्व भाषा को भी हृदय के ताप मे गलाकर कोमल, करूण, सरस प्रांजल कर लेना पड़ता है। इसके लिए समय की आवश्यकता है, उसी के प्रवाह में बहकर खड़ी बोली के खुरदरे रोड़े हमें धीरे – धीरे चिकने तथा चमकीले लगने लगेंगे।''[22]

पंत भाव और भाषा के बीच में एक स्वर–संगति की कल्पना करते हैं। यही स्वर–संगति चित्रात्मकता है। चित्रात्मकता कोई वाह्य गुण नहीं होता, शब्दों की आत्मा की सही पहचान से अपने–आप आता है। इसी स्वर–संगति का संधान और साधन कवि के लिए अनिवार्य है। इस प्रकार पंत ने काव्य की ध्वन्यात्मकता का नया रूप खड़ा किया जो, 'कूलन में, केलित में, कुंजन, कछारन में' की बाह्य ध्वन्यात्मकता या संगीतात्मकता से अधिक

गहरी चीज थी और काव्य के प्राणतत्व से घनिष्ठतः संयुक्त थी। डॉ0 सुरेश गौतम का कहना है, ''पंत की भाषा जादूगर की भाषा है जो भावानुरूप बहती है। शब्दों, स्वरों शब्द–शक्तियों, अलंकारों, शब्दों का जितना सूक्ष्म और गहरा ज्ञान गीताकार से अपेक्षित है पंत उससे कहीं अधिक गहरें हैं। वैसे तो सभी छायावादी कवि। गीतकार भावाभिव्यंजना की सफलतापूर्वक सम्प्रेषित करने के लिए भाषा के धुरन्धर विद्वान् हैं, एक कुशल मूर्तिकार की भाँति गीतों को संवारते–तराशते रहे हैं, लेकिन पंत शब्दों और भावों के अन्तस् की पहचान में उनसे इक्कीस है।''[23]

शब्दों की संगीतात्मकता की पहचान पंत के छायावादी काव्य में शब्दों की आभ्यंतर ध्वन्यात्मकता तथा वाह्य नादात्मकता के रूप में व्यक्त हुई है। भाषा की राग शक्ति का विवेचन करते हुए पंत के तुक, अलंकार, छंद आदि पर भी विचार किया है। इनमें से छंद पर हम आगे विचार करेंगे। तुक और अलंकार को इसी सन्दर्भ में देखेंगे।

भाषा की आभ्यंतर ध्वन्यात्मकता पंत के छायावादी काव्य में प्रायः वाह्य नादात्मकता की अपेक्षा प्रधान रही है। यह ध्वन्यात्मक शब्दों के सही चुनाव और संयोजन से उत्पन्न होती है। भाषा की चित्रात्मकता की चर्चा करते हुए हम इस प्रकार के कुछ उदाहरण दे आये हैं। दो अन्य उदाहरण (एक पल्लव से तथा एक गुंजन से) द्रष्टव्य है :

1– विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव श्रृगार
पूजा हूँ मैं तुम्हें कुमारि!
मूँद दुहरे दृग द्वार![24]

2– आज चंचल–चंचल मन–प्राण,
आज रे शिथिल–शिथिल तन भार।
आज दो प्राणों का दिनमान
आज संसार नहीं संसार![25]

प्रथम उदाहरण में विधुर शब्द में हृदय का सूनापन 'कुमारि' संबोधन में प्रेम की पवित्रता तथा 'दुहरे' शब्द में मूंदने की क्रिया की दृढ़ता तथा एकांत की स्थिरता का भाव सफाई से व्यक्त हुआ है। 'विधुर' शब्द के बाद 'कुमारि' शब्द तथा पूजा की क्रिया के साथ द्वार मूंदने की क्रिया परस्पर अद्‌भुत चमत्कार का सृजन करते है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'चंचल' शब्द की आवृत्ति में उमगने तथा 'शिथिल' शब्द की आवृत्ति में गतावरण की मादकता के प्रभाव की व्यंजना हुई है। तीसरी पंक्ति प्राणों का दिनमान प्रेम के क्षणों में काल की सत्ता समाप्त हो जाने की ओर संकेत करता है। चौथी पंक्ति में संसार शब्द की आवृत्ति में विस्मृति और खो जाने का भाव व्यक्त हुआ है। ये दोनों की उदाहरण आभ्यंतर शब्द–संगीत या शब्द–ध्वनि की आंतरिक पहचान के अद्‌भुत उदाहरण हैं।

ध्वनयात्मकता के आभ्यंतर और वाह्य स्वरूपों का अवतरण पंत के छायावादी काव्य में देखने के बाद अब हम इस काव्य में तुक और अलंकार की अवस्थिति पर विचार करेंगे। तुक को पंत भाषा के संगीत का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। इसे उन्होंने राग का हृदय कहा है। पर साथ ही अतुकांत कविता का भी स्थान वे स्वीकार करते हैं। उनका तर्क है कि कर्म 'एक्शन' का प्राधान्य जिस प्रकार जीवन में तुक को भंग करता है उसी प्रकार कविता में भी। इसलिए अतुकांत कविता कर्म–संकुलता और 'अश्रांत दौड़' की कविता है। गीतिकाव्य भावपूर्ण, शांत संगीतामयता का काव्य है, इसलिए उसमें तुक बहुत आवश्यक है। अपने छायावादी काव्य में पंत ने सर्वत्र तुक का उपयोग किया है।

अलंकारो को भी पंत ने राग–दृष्टि से ही संयोजित किया है। वे लिखते हैं, ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पृष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं; वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं; पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।''[26] अलंकार के सम्बन्ध में इतनी संवेदना–प्रधान दृष्टि रखने के कारण पंत ने अलंकारों का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति को अधिक प्रखर या व्यंजन बनाने के लिए ही किया है। पंत के छायावादी काव्य से सांगरूपक का प्रसिद्ध निम्नलिखित है :

अहे वासुकि सहस्र फन!
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निंतर
x x x
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुंडल
दिङ्.मंडल![27]

छंद की रागवादी दृष्टि

कवि पंत ने कविता का मूल स्वभाव छन्द में लयात्म होना माना है। छन्द तो नदी के दो तटों की भाँति है। अस्तु छन्दहीन भाव सुन्दर कविता नहीं बन सकते हैं। इस संबध में पंत के विचार अलोकनीय हैं, ''कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते,–जिनके बिना वह अपनी ही बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छंद भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर, उन्हें सजीव बना देते हैं।''[28] यही नहीं ,वे जीवन और छंद का अभिन्न सम्बन्ध मानते हैं। ''कवि की छंद–योजना से पता लगता है कि छन्द को अपनी उँगलियों पर नचाने से पूर्व उसे स्वयं छंदों के संकेतों पर नाचना पड़ा है।''[29] 'पल्लव' की भूमिका में उन्होंने स्वयं ही अपनी इस कला की ओर संकेत किया है। उन्होंने मात्रिक और वर्णिक छन्दों में से केवल मात्रिक छन्द ही चुने हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि हिन्दी के शब्द–विन्यास की प्रकृति स्वरों से अधिक निर्मित है। अतःउसके राग और संगीत की रक्षा मात्रिक छन्दों में ही हो सकती है। जो कार्य भाव–जगत् में इनकी कल्पना करती है, वही शब्द–जगत् में राग। हिन्दी के प्रचलित छन्दों में पीयूषवर्षण, रूपमाला, सखी, रोला, पद्धटिका,

चौपाई आदि ही कवि को अच्छें लगते हैं। प्राचीन एकस्वरता (Monotony) को बचाने के लिए उन्होंने उनमें बहुत से सुधार और परिवर्तन भी किये हैं। अंग्रेजी छन्द–योजना के अनुकरण पर पंत जी ने कविवर निराला के साथ मुक्त छन्द का भी अविष्कार किया है। 'ग्रन्थि' में अपने run-on lines का प्रयोग किया है–

> और, भोले प्रेम!क्या तुम हो बने –
> वेदना के विकल हाथों से? जहाँ –
> झुमते गज से विचरते हो, वहीं –
> आह है, उन्माद है, उत्ताप है –[30]

प्रतीकात्मकता

जिस मूर्त वस्तु के वर्णन द्वारा अमूर्त रहस्य या मनःस्थिति की व्यंजना की जाती है उसे 'प्रतीक' कहते हैं। ''छायावाद की जिस नवीन प्रतीक अभिव्यंजना वाली शैली का प्रवर्तन प्रसाद जी ने किया और निराला जी ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा से जिसे पुष्ट किया, उसका चरम विकास पंतजी द्वारा हुआ है।''[31] छायावादी कवियों ने भाषा में व्यंजकता लाने के लिए प्रतीकों के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया है एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

> चादनी का स्वभाव में भास
> विचारों में बच्चों के साँस![32]

इन पंक्तियों मे 'चाँदनी' में स्निग्धता एवं शीतलता का तथा 'बच्चों के साँस' भोलेपन का, प्रतीक है।

निष्कर्ष

इसके साथ ही पंत के छायावादी शिल्प का यह संक्षिप्त विवेचन समाप्त होता है। यदि एक शब्द में इस शिल्प की समस्त विशेषताओं को समेटना हो तो वह शब्द होगा–चित्रात्मकता। यहाँ यह दुहरा देना भी उचित होगा कि पंत के लिए चित्रात्मकता तथा 'भाव एवं भाषा का स्वरैक्य परस्पर समानार्थी है।'

इस प्रकार छायावाद काल में पंत का संवेदनशील कवि मानस प्रकृति के बाह्य–रूप, रस, गंध, स्पर्श, ध्वनि–समन्वित–सौन्दर्य को अपने भीतर समाहित कर लेने के लिए आकुल दिखाई देता है। वे तितलियों का उड़ना और उनके रंगीन पंखों का उठना–गिरना देखते हैं। 'उच्छ्‌वास' से लेकर 'गुजन' ('उच्छ्‌वास', 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव' और 'गुंजन') तक की कविता का सम्पूर्ण भावपट कवि की सौन्दर्य–चेतना का काल है। शब्द, शिल्प, भाव, भाषा, और उत्तर–उद्‌बोधन सभी दृष्टियों से कवि एक अत्यन्त सूक्ष्म–बारीक और ह्रदयहारी सौन्दर्य की सृष्टि करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ0 नगेन्द्र, सुमित्रानंदन पंत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सातवां संस्करण–1978, पृ0 41*
2. *डॉ0 रामजी पाण्डेय, सुमित्रानंदन पंत, व्यक्तित्व और कृतित्व, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1978, पृ0 168*
3. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संशोधित एवं वरिवर्धित इकतीसवां संसकरण सं0 2053 वि0*
4. *कृष्णदत्त पालीवाल, सुमित्रानंदन पंत पंत, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण 1985, संशोधित संस्करण–2002, पृ0 106*
5. *डॉ0 रामजी पाण्डेय, सुमित्रानंदन पंत व्यक्तित्व और कृतित्व, नेशनल, पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण–1982, पृ0 196*
6. *डॉ0 नगेन्द्र, सुमित्रानंदन पंत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सातवां संस्करण–1978, पृ0*
7. *सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 132–133*
8. *सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड–1, गुंजन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979, द्वितीय संस्करण 1993, दूसरी आवृत्ति : 2011, पृ0 274*
9. *डॉ0 नगेन्द्र, सुमित्रानंदन पंत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सातवां संस्करण–1978, पृ0 41*
10. *सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड–1, गुंजन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979, द्वितीय संस्करण 1993, दूसरी आवृत्ति : 2011, पृ0 250*
11. *वही, पृ0 252*
12. *सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 65–65*
13. *वही, पृ0 66*
14. *वही, पृ0 30*
15. *नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1990, पृ0 38*
16. *सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 143*
17. *वही, पृ0 30*
18. *वही, पृ0 129*
19. *डॉ0 नगेन्द्र, सुमित्रानंदन पंत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सातवां संस्करण–1978, पृ0 25*
20. *सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 63*
21. *सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड–1, गुंजन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979, द्वितीय संस्करण 1993, दूसरी आवृत्ति : 2011, पृ0 269*
22. *सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 50*
23. *सं0 सदानंद गुप्त, सह सं0 डॉ0 उदयप्रताप सिंह, समन्वय (सुमित्रानंदन पंत विशेषांक), अखिल भारतीय साहित्य परिषद, गोरखपुर, पृ0 110*
24. *सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 69*

25. *सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड–1, गुंजन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979, द्वितीय संस्करण 1993, दूसरी आवृत्ति : 2011, पृ0 255*
26. *सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 31*
27. *वही, पृ0 143*
28. *वही, पृ0 33*
29. *डॉ0 नगेन्द्र, सुमित्रानंदन पंत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सातवां संस्करण–1978, पृ0 56*
30. *सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, खण्ड–1, ग्रन्थि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979, द्वितीय संस्करण 1993, दूसरी आवृत्ति : 2011, पृ0 135*
31. *कान्ता पंत, पंत की काव्य भाषा (शैली वैज्ञानिक विश्लेषण), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1991, पृ90 129*
32. *सुमित्रानंदन पंत–पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण– 1993, आवृत्ति : 1998, पृ0 69*
33. *बालमुकुन्द पाठक एवं गोपाल लाल श्रीवास्तव, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास एवं निबन्ध लेखन, विद्यार्थी पुस्तक भण्डार, गोरखपुर, संस्करण, 2020, पृ. 107, 108, 109*
34. *रामस्वरूप चतुर्वेदी, ''हिन्दी साहित्य और संवदेना का विकास'' लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1, संस्करण, 2020ण पृ0 132, 33*
35. *हजारी प्रसाद द्विवेदी, ''हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास'', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2019–20, पृ0 244–45*